

सम्यग्दृष्टि की अपूर्व भावना

अहा ! सम्यग्दृष्टि धर्मात्मा ऐसा भाता है कि मैं निर्विकल्प हूँ, शुद्ध हूँ, बुद्ध हूँ, परम-उदासीन हूँ और जगत के सब जीव भी स्वभाव से ऐसे ही हैं। सूक्ष्म निगोद के जो अनन्त जीव हैं, उन सबका स्वरूप भी ऐसा शुद्ध सच्चिदानन्दमय है। कन्दमूल के एक अंश में असंख्य जीव हैं। इन सब जीवों का द्रव्य शुद्ध चिद्घन आनन्दघन है वह ऐसी भावना भाता है। जगत के सर्व जीवों को धर्मात्मा द्रव्यदृष्टि से ऐसा ही देखता है।

अहा ! मैं ऐसा शुद्ध, बुद्ध, चैतन्यघन, ज्ञानमूर्ति प्रभु आत्मा हूँ वह ऐसा अतीन्द्रिय आनन्द की अनुभूति स्वरूप स्व-संवेदन ज्ञान में जाना जाता है। इसके सिवाय वह शुद्ध-बुद्ध आत्मा भगवान से नहीं जाना जाता, भगवान की वाणी से भी नहीं जाना जाता और व्यवहार-रत्नत्रय के विकल्प से भी नहीं जाना जाता। वह तो निर्विकार स्व-संवेदनलक्षण क्षयोपशमज्ञान से जाना जाता है। आत्मा स्वयं स्व-संवेद्य है न ? अर्थात् स्वानुभव की दशा में जो ज्ञान स्वाभिमुख हुआ है, उससे ही वह जानने में आता है, अन्य किसी प्रकार से वह प्राप्त नहीं होता।

अहा ! मैं अपनी केवलज्ञान आदि अनंत शक्तियों से भरा हुआ पूर्ण परमात्मा हूँ। निश्चय से मेरा आत्मा अनंत दर्शन, अनंत आनन्द, अनन्त वीर्य, अनन्त स्वच्छता, अनन्त प्रकाश, अनन्त प्रभुता आदि अनन्त शक्तियों से भरा हुआ है। धर्म की पहली सीढ़ीवाला सम्यग्दृष्टि जीव अपने आत्मा को इसप्रकार भाता है, ध्याता है। जगत के सभी आत्मा शक्तिरूप से भगवान हैं, राग-द्वेषादि विभाव से रहित शून्य हैं, भावकर्म-द्रव्यकर्म-नोकर्म से भिन्न हैं वह ऐसा वह जानता है। अहा ! जिस भाव से तीर्थकर प्रकृति बंधे वह भाव भी विभाव अर्थात् विपरीत भाव है और इससे भगवान आत्मा शून्य है वह ऐसा समकृति जानता है। अहो ! जिसमें जगत के सर्व जीव समानपने शक्ति से परिपूर्ण भासते हैं, ऐसे समकृति की भावना कोई अचिंत्य और अलौकिक है। अहा ! अनन्त शक्ति से भरा पूर्ण चैतन्य दरिया जिसमें भासित हुआ, वह भावना अपूर्व है। पास में पाँच-दस करोड़ का संयोग हो तो सेठ लोग मानते हैं कि वह हम भी कुछ हैं; पर बापू ! ये तो सब पुण्य की धूल है।

हृ प्रवचनरत्नाकर, भाग : ९, पृष्ठ : १४७, १४८

वीतराग-विज्ञान

वीतराग-विज्ञान ही, तीन लोक में सार।
वीतराग-विज्ञान का, घर-घर होय प्रसार।।

वर्ष : 20

240

अंक : 12

द्रव्यसंग्रह पद्यानुवाद

- डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल

षडद्रव्य-पंचास्तिकाय अधिकार

आकाश वह जीवादि को अवकाश देने योग्य जो।
आकाश के दो भेद हैं जो लोक और अलोक हैं।।१९।।
काल धर्माधर्म जिय पुद्गल रहें जिस क्षेत्र में।
वह क्षेत्र ही बस लोक है अवशेष क्षेत्र अलोक है।।२०।।
परीवर्तनरूप परिणामादि लक्षित काल जो।
व्यवहार वह परमार्थ तो बस वर्तनामय जानिये।।२१।।
जानलो इस लोक के जो एक-एक प्रदेश पर।
रत्नराशिवत् जड़े वे असंख्य कालाणु दरव।।२२।।
इसतरह ये छह दरब जो जीव और अजीवमय।
कालबिन बाकी दरव ही पंच अस्तिकाय हैं।।२३।।
कायवत बहुप्रदेशी हैं इसलिए तो काय हैं।
अस्तित्वमय हैं इसलिए अस्ति कहा जिनदेव ने।।२४।।
हैं अनंत प्रदेश नभ जिय धर्म अधर्म असंख्य हैं।
सब पुद्गलों के त्रिविध एवं काल का बस एक है।।२५।।
यद्यपि पुद्गल अणु है मात्र एक प्रदेशमय।
पर बहुप्रदेशी कहे जिन स्कन्ध के उपचार से।।२६।।
एक अणु जितनी जगह घेरे प्रदेश कहे उसे।
किन्तु एक प्रदेश में ही अनेक परमाणु रहे।।२७।।

स्वभाव में ज्ञान हो तभी बाहर आता है।

जीव बाहर की क्रिया करने में अटक जाता है। आत्मा के भान बिना जन्म-मरण का अंत नहीं होता। दुनिया स्वयं के चैतन्य की कीमत नहीं करती, परपदार्थ और क्रिया की कीमत करती है; इसलिए उसका संसार में परिभ्रमण होता है।

जैसे लेंडीपीपर को घिसने से तीखापन प्रगट होता है; वैसे ही आत्मा में श्रद्धा-ज्ञान और एकाग्रता करने से आत्मा की केवलज्ञान शक्ति प्रगट होती है। यह तो समझने जैसी बात है। जो दुनिया की झंझट छोड़कर आत्मा को पहचानने के लिए समय निकालता है, वही जीव संबोधने योग्य है, अन्य संबोधने योग्य नहीं है। यह जीव दुनिया की झंझट में पड़कर स्वयं का सच्चिदानन्द रत्न भूल गया है।

भगवान महावीर का जन्म दिवस क्यों मनाते हैं ? प्रभु ने स्वयं की आत्मा का हित करके जन्म-मरण का अंत किया है; इसलिये उनका जन्म दिवस मनाते हैं।

जैसे लेंडीपीपर के कालेपन के पीछे पूर्ण तीखापन और हरा रंग पड़ा है; वैसे ही इस देह, कर्म, क्रोध, मान, माया, लोभ आदि के विकार के पीछे यह सच्चिदानन्द प्रभु अनन्तशक्ति सहित विराजमान है, उसको जिसने प्रगट किया है - ऐसे महावीर परमात्मा की हम जन्म-जयन्ती मनाते हैं।

मनुष्य जन्म की सफलता तो आत्मा के भान करने में ही है। 25-50 लाख रूपये मिलने से जीवन की सफलता नहीं है। अभी पूर्व श्लोक में आया था कि जिसे चिंतामणी रत्न की प्राप्ति हुई है, वह उससे सड़ा हुआ खली का टुकड़ा मांगता है या सुंदर बड़ा महल मांगता है ? वह तो करोड़ों और अरबों का महल ही मांगता है। वैसे ही जिसकी दृष्टि में स्वयं का सच्चिदानन्द प्रभु चिंतामणी प्राप्त हुआ, उसमें एकाग्र हुआ, उस जीव को आत्मा की शांति के अतिरिक्त सड़ी हुई खली के टुकड़े जैसे स्वर्ग के वैभव की इच्छा कैसे हो सकती है ? उसे तो आत्मा की अपूर्व शांति के अतिरिक्त स्वर्ग के वैभव की कुछ भी कीमत नहीं है।

स्पर्श, रस, गंध, वर्ण रहित अमूर्तिक एक वस्तु आत्मा है न ! यह वस्तु तो अनादि-

अनन्त शाश्वत है। इस आत्मा ने अज्ञानवश स्वर्ग-नरकादि के अनन्तभव किये और अनन्त दुःख भोगे। अनन्त भवों में इसे क्या नहीं मिला ? एक शुद्ध आत्मा के अतिरिक्त बहुत कुछ मिला और छूटा है। यदि यह जीव एकबार आत्मा का भान करता है, तो उसे अमूल्य चिंतामणि रत्न जैसा अतीन्द्रिय आनन्द का - शांति का सागर प्राप्त होता है।

पुण्य का उदय हो उससे महा कीमती माणक मोती मिले; किन्तु उससे आत्मा को क्या लाभ ? एक सेठ ने माणक को निकालकर पटेल को बताया और कहा पटेल ! यह मोती बहुत पानीदार अर्थात् चमकदार है। मोती में पानी का दरिया (समुद्र) भरा है। पटेल कहता है सेठ ! मेरे दुपट्टे की गांठ गीली हो तो मानुं कि मोती में पानी (चमक) है। अरे पटेल ! इस मोती के पानी की चमक, यह तेज, इसका प्रकाश दुपट्टे की गांठ गीली होने से नहीं नजर आता, दृष्टि से नजर आता है; वैसे ही यह आत्मा अनन्त शांति आनन्द आदि अनन्त गुणों का दरिया है, वह भी दृष्टि से नजर आता है; अतः उसकी दृष्टि कर ! अन्तर में दृष्टि करने से आत्मरतन का पारखी होता है। भाई ! बाहर की क्रिया करने से या मंदराग से आत्मा का पारखी नहीं हो सकता है।

यहाँ 21 वें श्लोक में कहते हैं कि स्वसंवेदन से आत्मा पहचाना जाता है

स्वसंवेदनसुव्यक्तस्तनुमात्रो

निरत्ययः।

अत्यन्तसौख्यवानात्मा, लोकालोकविलोकनः ॥21॥

आत्मा लोक और अलोक को देखने-जाननेवाला, अत्यन्त अनन्तसुख स्वभाववाला, शरीरप्रमाण, नित्य, स्वसंवेदन से तथा कहे हुए गुणों से योगिजनों द्वारा अच्छीतरह अनुभव में आया हुआ है।

इस ब्रह्माण्ड के - आकाश के दो भेद हैं, लोक और अलोक। असंख्य योजन के अंदर लोक है, जिसमें जड़-चैतन्य का निवास है। बाकी खाली जगह है। जिसका पार नहीं - ऐसे अपार आकाश को भी यह आत्मा एक समय में जान लेता है। एक समय में लोकालोक को जान ले - ऐसी अनन्त शक्तिवाले आत्मा को एक मात्र स्वसंवेदन से ही जान सकते हैं।

वाणी से जिसकी महिमा नहीं गा सकते - ऐसा वचनातीत महिमा का धारी आत्मा

स्वयं के लिए व्यक्त ही है। योगीजनों ने स्वयं के आत्मा को सुव्यक्त देखा है। अरे ! घी जैसी मामूली वस्तु के स्वाद को कोई उपमा देकर नहीं कह सका, तो आत्मा जैसी उत्तम वस्तु को कौन सी उपमा दे सकते हैं ? ऐसी अनुपम वस्तु को किसी की उपमा देकर समझा नहीं सकते। मात्र उसे तो अनुभव द्वारा ही जान सकते हैं; क्योंकि वह सुव्यक्त है। मूल श्लोक में भी यह शब्द आया है **स्वसंवेदन सुव्यक्त**। सुव्यक्त प्रभु ! तुम्हारा स्वरूप प्रमाणसिद्ध है, न जान सके ऐसा नहीं है।

भाई ! इस देहरूपी माटी के पिण्ड में विलास करते हुए आत्मा को सुव्यक्तपना कैसे हो ? तो कहते हैं कि जो ऐसा जानता है कि मैं चैतन्य हूँ, ज्ञान का अंश हूँ, चैतन्य का पिण्ड हूँ, तब अंतर में स्वसंवेदन होता है, आत्मा प्रगट...प्रगट...प्रगट जानने में आता है, अनुभव में आता है। देह, मन, राग, विकल्प, वाणी आदि से पार प्रगट आत्मा अनुभव में आवे - ऐसा यह प्रमाणप्रसिद्ध आत्मा है। भाई ! परद्रव्य को तो कोई भोग ही नहीं सकता। पैसा खूब हो; परन्तु परद्रव्यों को पैसेवाला भी नहीं भोग सकता। जो जीव पैसों के राग को भोगकर उसमें आनन्द मानता है - वह जीव मूढ़ है। ऐसी मूढ़ता तो इसने अनादि से की ही है। भाई ! अब इस मनुष्यभव में नया क्या किया ? वास्तव में तो आत्मा का स्वसंवेदन ही तेरी अपूर्वदशा है, नवीनता है।

परमात्मा महावीर प्रभु ने जीवों को स्वसंवेदन कराने के लिए यह इष्टोपदेश दिया है; परन्तु देव अथवा गुरु तुझे स्वसंवेदन करा देंगे - ऐसा हो ही नहीं सकता। **स्वयं करे तो मिले**। परन्तु तेरे पास समय नहीं है, बहुत काम है न ! भगवान कहते हैं कि भाई ! तू तो मेरी जाति का है। मेरी और तुम्हारी जाति में कोई अंतर नहीं है। मात्र शक्ति-व्यक्ति का ही अंतर है। हमने प्रगट कर लिया और तुमने प्रगट नहीं किया। यदि तू ऐसा जाने कि मेरे प्रगट कराने से तुझे आत्मा प्रगट होगा तो यह मान्यता मिथ्या है, इससे आत्मा कभी प्राप्त नहीं हो सकता। भाई ! तुझे तेरी संसार की मोज-मस्ती प्रत्यक्ष ज्ञात हो रही है; परन्तु ऐसा जाननेवाला तुझे ज्ञात नहीं हो रहा है। एकबार तो पुरुषार्थ कर ! तुझे अपनी आत्मा में शांति अवश्य प्राप्त होगी।

(क्रमशः)

नियमसार प्रवचन

देखो ! महासमर्थ आचार्यों की निर्मानता

परमपूज्य सर्वश्रेष्ठ दिगम्बराचार्य कुन्दकुन्द के प्रसिद्ध परमागम नियमसार नामक ग्रन्थराज पर मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेव ने तात्पर्यवृत्ति नामक अत्यन्त गम्भीर संस्कृत टीका लिखी है।

उक्त संस्कृत टीका के मंगलाचरण के **पाँचवे, छठवें एवं सातवें श्लोक** पर हुए आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजीस्वामी के अध्यात्मरसगर्भित प्रवचनों का संक्षिप्त सार यहाँ दिया जा रहा है।

(गतांक से आगे)

निमित्त की अपेक्षा भव्यजीवों के लिए और उपादान अपेक्षा मैं स्वयं की आत्मा की शुद्धता के लिए यह टीका कर रहा हूँ। इस टीका द्वारा शुद्ध चैतन्य परमपारिणामिक स्वभाव का घोलन करने से विकल्प टूट जायेगा और शुद्धता की प्राप्त हो जायेगी। श्री अमृतचंद्राचार्य देव ने समयसार के मंगलाचरण में भी यही कहा है।

यह टीका भव्यजीवों के मोक्ष के लिए की गई है अर्थात् यदि कोई इससे राग का या संसार का आशय निकाले तो उसने टीका को समझा ही नहीं है। मेरे स्वयं के अंतर में द्रव्य की तरफ झुकाव है, मेरा वजन टीका के शब्दों या विकल्प के ऊपर नहीं है। मेरे अन्दर तो चैतन्यस्वभाव की रुचि लगी है। उसका जोर होने से विकल्प टूटकर शुद्धता की प्राप्ति होगी। भव्य जीवों को मोक्ष हो और मेरे आत्मा की शुद्धता हो - यही इस टीका का फल है।

‘मोक्षमार्ग के लिए’ ऐसा न कहकर; ‘मोक्ष के लिए’ ऐसा कहा है। जहाँ स्वभाव की दृष्टि की वहाँ दृष्टि में तो मोक्ष हो ही गया और वह जीव अल्पकाल में ही मोक्ष की प्राप्ति करेगा। इसलिए कहा है कि भव्यजीवों को मोक्ष के लिए और मेरी आत्मा की शुद्धता के लिए इस नियमसार की टीका कहूँगा।

इसप्रकार टीका करने की प्रतिज्ञा तो की; परन्तु यहाँ स्वयं की निर्मानता व्यक्त करते हुए विनयपूर्वक कहते हैं कि -

गुणधरणधरचितं श्रुतधरसन्तानतस्तु सुव्यक्तम्।

परमागामार्थसार्थं वक्तुममुं के वयं मन्दाः॥५॥

गुण के धारण करनेवाले गणधरों से रचित और श्रुतधरों की परम्परा से अच्छी तरह व्यक्त किये गये इस परमागम के अर्थ समूह का कथन करने में हम मन्दबुद्धि तो कौन ?

तीर्थंकर भगवान के श्रीमुख से जो ध्वनि निकली, उस दिव्यध्वनि को गुण के धारक गणधरदेवों ने झेलकर रचा और उसके पश्चात् श्रुतज्ञान को धारण करनेवाले संतों की परम्परा से पूर्णरूप से व्यक्त किये गये इस परमागम के अर्थसमूह का कथन करने में हम मंदबुद्धि भला कौन होते हैं? संतों की परम्परा में कुंदकुंदाचार्यदेव वगैरह आ जाते हैं ; किन्तु संतों की परम्परा में किसी की शिथिलतावश जो विपरीतता आई, उसकी यहाँ बात नहीं। यहाँ तो एक गणधर की परम्परा से जो तत्त्व आया और भगवान कुंदकुंदाचार्यदेव ने जो व्यक्त किया, उसका ही कथन है।

अहो ! स्वयं महासमर्थ संत होते हुए भी कितनी निर्मानता हैं। उन्होनें टीका में ऐसे रहस्य का उद्घाटन किया है कि दूसरे किसी ग्रन्थ में ऐसे रहस्य का उद्घाटन नहीं है। अंतर में चैतन्य का स्पर्श करके शुद्धकारण पर्याय, स्वरूप प्रत्यक्ष उपयोग वगैरह का अपूर्व, अलौकिक रहस्य बताया है तो भी कहते हैं कि अरे ! गणधरादिक महासंतों के सामने हम मंदबुद्धि कौन ?

तथापि ह

अस्माकं मानसान्युच्चैः प्रेरितानि पुनः पुनः।

परमागमसारस्य रुच्या मांसलयाऽधुना ॥6॥

इससमय हमारा मन परमागम के सार की पुष्ट रुचि से पुनः पुनः अत्यन्त प्रेरित हो रहा है। उस रुचि से प्रेरित होने के कारण **तात्पर्यवृत्ति** नाम की यह टीका रची जा रही है।

राग को लंबाने की भावना नहीं है। इसलिए कहते हैं कि इससमय हमने मन में इस शास्त्र की टीका करने का विकल्प उठाया है। पहले विकल्प नहीं था; परन्तु इससमय वर्तमान में विकल्प उठा है कि इस महान परमागम की टीका हो तो ठीक रहेगा। यह परमागम का सार है, उसकी पुष्ट रुचि से हमारा मन इस समय टीका करने के लिए प्रेरित हुआ है। पुनः पुनः विकल्प आ जाता है कि इस परमागम के सार का टीका में खुलासा करूँ।

इस परमागम में अलौकिक रहस्य भरा है, उसकी पुष्ट रुचि से इस समय पुनः पुनः हमारा मन टीका करने को प्रेरित हो रहा है। क्षण में विकल्प टूटकर आनन्द का अनुभव

करते हैं, बाद में टीका करने का विकल्प उठता है ; इसलिए यहाँ इस टीका को रचते हैं।

देखो ! 'हमारा मन प्रेरित होता है' – ऐसा कहा है। विकल्प उठा है, उसमें मन निमित्त है। वह विकल्प कोई पर के कारण से नहीं उठा है, वह तो अपनी निर्बलता के कारण उठा है। फिर भी उस विकल्प की भावना नहीं है, यहाँ तो मात्र आत्मा की शुद्धता की ही भावना है।

ये तो महासंत, भावलिंगी मुनि आत्मा की रमणता में झूलनेवाले थे। उनके एक-एक शब्द में गूढ रहस्य भरे हैं। यह तो समझने जैसी बात है। ऐसी बातें महाभाग्यशाली को ही सुनने को मिलती है।

आचार्यदेव कहते हैं कि टीका के शब्दों का कर्ता मैं नहीं हूँ, विकल्प उठा उसका भी मैं बिल्कुल कर्ता नहीं हूँ। मैं तो उस विकल्प का ज्ञाता ही हूँ। ऐसे भानपूर्वक विकल्प उठा है और टीका की रचना हुई है।

अब इस नियमसार में क्या कथन आने वाला है, उसे कहते हैं –

पञ्चास्तिकायषड्द्रव्यसप्ततत्त्वनवार्थकाः ।

प्रोक्ताः सूत्रकृता पूर्वं प्रत्याख्यानदिसत्क्रियाः ॥7॥

सूत्रकार ने पहले पाँच अस्तिकाय, छह द्रव्य, सात तत्त्व और नव पदार्थ तथा प्रत्याख्यानदि सत्क्रिया का कथन किया है अर्थात् भगवान कुंदकुंदाचार्यदेव ने इस शास्त्र में प्रथम पाँच अस्तिकाय आदि और पश्चात् प्रत्याख्यानदि सत्क्रिया का कथन किया है।

सूत्रकार श्री भगवान कुंदकुंदाचार्यदेव है। वे लगभग 2000 वर्ष पहले हुए और टीकाकार पद्मप्रभमलधारीदेव मुनिराज लगभग तेरहवीं शताब्दी में हुए हैं।

निर्विकल्प आत्मा की ज्ञानक्रिया ही सत् क्रिया है। शुभराग की वृत्ति उठे वह सत् क्रिया नहीं; अपितु विकार की क्रिया है। चैतन्यस्वभाव ध्रुव परमपारिणामिक तत्त्व है, उसके आश्रय से जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की क्रिया होती है, उसका नाम सत्क्रिया है। प्रत्याख्यान किसे कहते हैं और भक्ति किसे कहते हैं ? चैतन्य में लीनता ही प्रत्याख्यान है और भक्ति वगैरह सत्क्रिया है। जो राग होता है, वह असत्क्रिया है और शरीरादिक की क्रिया तो जड़ की क्रिया है।

(क्रमशः)

शक्तियों का संग्रहालय : भगवान आत्मा

परमपूज्य सर्वश्रेष्ठ दिगम्बराचार्य कुन्दकुन्द के प्रसिद्ध परमागम समयसार नामक ग्रन्थाधिराज पर परमपूज्य आचार्य अमृतचन्द्रदेव ने 'आत्मख्याति' नामक संस्कृत टीका लिखी है, उसके अन्त में परिशिष्ट के रूप में अनेकान्त का विस्तृत वर्णन करते हुये आत्मा की 47 शक्तियों का वर्णन किया है &

उन पर आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजीस्वामी ने समय-समय पर अतिमहत्त्वपूर्ण प्रवचन किये हैं, जो पाठकों के लाभार्थ क्रमशः प्रस्तुत हैं।

(गतांक से आगे)

देखो, श्री रामचन्द्रजी ज्ञानी-धर्मात्मा थे; उसी भव में मोक्षगामी थे। रामचन्द्रजी बलदेव थे और लक्ष्मणजी वासुदेव। दोनों भाईयों में परस्पर इतना अपार प्रेम था कि 'रामचन्द्रजी का स्वर्गवास हो गया' - इतने से शब्द कानों में पड़ते ही 'हाय राम !' कहते हुए लक्ष्मण के प्राण-पखेरु उड़ गये। फिर रामचन्द्रजी लक्ष्मणजी के मृत शरीर को लेकर छह महीने तक फिरते रहे, अनेकप्रकार से विलाप और प्रलाप करते रहे कि - भाई ! कबतक सोते रहोगे ? अब तो उठो, सबेरा हो गया है। जिनेन्द्र भगवान की पूजा का समय जा रहा है ! जल्दी उठो ! लक्ष्मणजी के शरीर (शव) को कंधे पर रखकर घूमते हैं, तथापि रामचन्द्रजी उनके साथ किंचित् भी संबंध नहीं मानते थे। स्वभाव के साथ स्व-स्वामी संबंध के अतिरिक्त अन्य किसी के साथ अंशमात्रा भी संबंध नहीं मानते थे। किन्तु बाहर से देखनेवाले अज्ञानी जीव धर्मात्मा को ऐसी अन्तर्दृष्टि से देखने की दृष्टि कहाँ से पा सकते हैं ? छह-छह महीने तक उपरोक्तानुसार चेष्टाएँ करते हैं; तथापि उससमय भी लक्ष्मणजी के साथ या उनकी ओर के राग के साथ रामचन्द्रजी स्व-स्वामी संबंध नहीं मानते; उससमय भी अपने ज्ञायक-स्वभाव के आश्रय से जो सम्यग्दर्शनादि वर्तते हैं, उन्हीं के स्वामीरूप से परिणामित होते हैं। धर्मात्मा के हृदय की थाह लेना अज्ञानी के लिए कठिन है।

प्रश्न - यदि रामचन्द्रजी लक्ष्मण के साथ किंचित् संबंध न मानते हों तो छह महीने तक उनके शव को लेकर क्यों फिरते रहे ?

उत्तर - अरे भैया ! ज्ञानी निरन्तर अन्तरंग में विवेकसहित हैं। तू रामचन्द्रजी के आत्मा को नहीं देखता; इसलिए तुझे ऐसा लगता है कि रामचन्द्रजी छह महीने तक शव को लेकर घूमते रहे; किन्तु ज्ञानी तो कहते हैं कि रामचन्द्रजी ने अपने आत्मा में राग को या लक्ष्मणजी को एक क्षणमात्रा भी नहीं उठाया है; चिदानन्दस्वभाव का स्वामित्व छोड़कर एकक्षण भी राग के या पर के स्वामी नहीं हुए हैं। अपने इस शरीर का स्वामी भी वे स्वयं को नहीं मानते। कंधे पर मुर्दा रखा है, उससमय भी आत्मा में सम्यग्दर्शनादि निर्मलभावों को ही उठाया है - उन्हीं का स्वामित्व वर्तता है। वर्तमान में जो कुछ दोष हैं, वह श्रद्धा-ज्ञान का दोष नहीं है; चारित्रा की कमजोरी का दोष है। उसे हटाना चाहता है; अतः वह दोष गौण है।

देखो, वेदान्त ऐसा कहता है कि 'करे तथापि अकर्ता रहता है (अनासक्ति से करता है) अरे ! ऐसी यह बात नहीं है; उसमें और इस बात में तो आकाश-पाताल का अन्तर है। करना फिर भी अकर्ता रहना यह बात ही परस्पर विरुद्ध है। जो करता है वह कर्ता ही है; रागादि का कर्ता भी हो और ज्ञाता भी रहे - ऐसा नहीं हो सकता। यहाँ तो ऐसी अन्तर्दृष्टि की अपूर्व बात है कि मुझे अपने ज्ञायकस्वभाव के साथ ही स्व-स्वामित्व संबंध है; पर के साथ मुझे संबंध है ही नहीं - ऐसा जानकर ज्ञायकस्वभाव के आश्रय से परिणामित होनेवाला जीव सम्यग्दर्शनादि निर्मलभावों के साथ ही एकत्वरूप से परिणामित होता है; रागादि के साथ एकत्वरूप से परिणामित होकर कर्ता नहीं होता; इसलिए वह अकर्ता है। जो आत्मा के ऐसे स्वभाव को पहिचाने उस धर्मात्मा को देव-गुरु-शास्त्रा का तथा अपने गुण-दोष आदि का यथार्थ विवेक हो जाये, उसे कहीं स्वच्छन्दता या उलझन न हो। धर्मात्मा की दशा बदल जाती है। बाहर से देखनेवाले जीव उसे नहीं जान सकते।

देखो, जब रावण सीता का हरण करके ले जाता है और रामचन्द्रजी उनकी खोज में निकलते हैं, उससमय वे वृक्षाँ और पर्वतों से भी पूछते हैं कि हे वृक्ष ! तुमने मेरी सीता को देखा है ? हे पर्वत ! तुमने कहीं जानकी को देखा है ? देखी हो तो मुझसे कहो। और उससमय अपने ही शब्दों की प्रतिध्वनि से उन्हें ऐसा लगता है कि पर्वत ने उत्तर दिया है। ऐसी दशा के समय भी रामचन्द्रजी ज्ञानी-विवेकी-धर्मात्मा हैं; अन्तर्दृष्टि में सीता का या सीता के प्रति राग का स्वामित्व नहीं मानते; किन्तु ज्ञान के ही स्वामीरूप से परिणामित होते हैं। यद्यपि ऐसे उपयोग में निरन्तर नहीं रहते; किन्तु ऐसा परिणामन तो निरन्तर है ही। (क्रमशः)

ज्ञान गौरी

सायंकालीन तत्त्वचर्चा के समय विभिन्न मुमुक्षुओं द्वारा
पूज्य स्वामीजी से पूछे गये प्रश्न और स्वामीजी द्वारा दिये गये उत्तर

प्रश्न : राजा-महाराजा सरीखे के एक ही रानी और धर्मी सम्यग्दृष्टि के 96 हजार रानियाँ ? फिर भी उसको बन्धन नहीं ?

उत्तर : भाई ! बाहर के पदार्थ बहुत हों तो बहुत बन्ध के कारण और अल्प हों तो अल्प बन्ध के कारण - ऐसा है नहीं। किसी का अधिक परमाणुओं से निर्मित स्थूल शरीर हो तो बन्धन विशेष और कृश शरीर हो तो बन्धन अल्प हो - ऐसा नहीं है। परद्रव्यों की अधिकता और अल्पता होना कहीं बन्ध और अबन्ध का कारण नहीं है। बन्ध का कारण तो परद्रव्य में एकत्वबुद्धि-स्वामित्वबुद्धि का होना ही है, संयोगों की अल्प-बहुत्वता बन्ध का कारण नहीं है। सम्यग्दृष्टि के 96 हजार रानियाँ, नवनिधान, 14 रत्न आदि वैभव होने पर भी वह चक्रवर्ती राजा धर्मी होने के कारण उन सबको अपना नहीं मानता; अतः वे परद्रव्य उसको बन्ध का कारण नहीं होते। इसके विपरीत एक रानी वाला राजा हो अथवा रानियों का त्यागी द्रव्यलिंगी मुनि हो; तथापि परद्रव्यों में स्वामित्व स्थापित करने वाला सदैव मिथ्यात्वरूप महापाप का बन्धक होता ही है। अन्दर में राग में एकत्वबुद्धि पड़ी, वही बन्ध का कारण है। संयोगों का अल्पाधिक आगमन तो उनके अपने कारण से है। आत्मा उनका कर्ता नहीं है। पूर्व पुण्य के कारण अनुकूल बहुल संयोगों की प्राप्ति होना बन्ध का कारण नहीं है। परद्रव्यों का संयोग विशेष होने पर भी उनसे बन्ध होता नहीं है - ऐसा कहकर परद्रव्यों से बन्ध होने की शंका छुड़ाई है। कहीं स्वच्छन्दी होने के लिए ऐसा कथन नहीं किया गया है - यह विशेष ध्यान रखने की बात है। स्वच्छन्दता का पोषण तो जिनागम में कहीं है ही नहीं। यहाँ तो दृष्टि के विषय की विशेषता बतलाई है। अधिक संयोग हो तो हानि और संयोग छूट जायें तो धर्मलाभ हो जाय - ऐसा है ही नहीं।

प्रश्न : सम्यग्दृष्टि जीव जब स्त्री को भी चैतन्यपरमेश्वर मानता है, तो राग छोड़कर क्यों नहीं बैठ जाता ?

उत्तर : स्वभावदृष्टि से तो सम्यग्दृष्टि एकतरफ ही बैठा है। एकतरफ बैठने की व्याख्या क्या ? परद्रव्य में तो कोई आत्मा बैठता नहीं, अज्ञानी जीव विकार में ही अपनापन मानकर

स्थित हुआ है; जबकि ज्ञानी जीव संयोग और विकार से अपने स्वभाव को भिन्न जानकर स्वभाव की एकता में स्थित है। ज्ञानी की जो स्त्री आदि सम्बन्धी राग होता है, उस राग से भिन्न अपने स्वरूप का अनुभव करता है और राग का आदर नहीं करता; इसलिये ज्ञानी जीव वास्तव में अपने स्वभाव में ही बैठा है।

प्रश्न : सम्यग्दृष्टि के श्रद्धान में शुभाशुभ दोनों भाव हेय हैं, तो क्या उसे अशुभ को छोड़कर शुभ करने का विकल्प नहीं आता ?

उत्तर : सम्यग्दृष्टि ऐसा जानता है कि शुद्धनिश्चय नय से मैं मोह-राग-द्वेष रहित शुद्ध हूँ। उसे ऐसा विकल्प कभी नहीं आता कि जब शास्त्र में शुभ और अशुभ दोनों को एक समान कहा है तो भले ही अशुभ आ जावे- क्या हानि है? सम्यग्दृष्टि अशुभ से बचने के लिए वाँचन, श्रवण, मनन, भक्ति आदि बराबर करता है। शुभ और अशुभ परमार्थ से समान ही है; तथापि अपनी भूमिका प्रमाण अशुभ की अपेक्षा शुभ में रहने का विवेक होता है और उसप्रकार का विकल्प भी आता है। अरे भाई ! सम्यग्दृष्टि को पापभाव में स्वच्छन्दता नहीं होती।

प्रश्न : ज्ञानी को अशुभभाव से बचने के लिए शुभभाव आता है- इसका तात्पर्य क्या है ?

उत्तर : ज्ञानी को जो शुभभाव आता है, वह अशुभ से बचने के लिए आता है - ऐसा जो कहने में आता है, वह तो लोगों को जरा सन्तोष हो जाय; इसलिए कहने में आता है। वास्तव में देखा जाय तो वह शुभराग उसके अपने आने के काल में ही आता है।

प्रश्न : तो फिर प्रायश्चित्त क्यों करने में आता है ?

उत्तर : यह सब कथनमात्र की बात है, कथन की पद्धति है। वास्तव में तो ऐसे विकल्प आने का काल था; अतः वही आया और वाणी भी ऐसी ही निकलने वाली थी; अतः वही निकली। अधिक सूक्ष्म में जायें तो वास्तव में शुभविकल्प तथा प्रायश्चित्त की वाणी निकलना अथवा गुरुवाणी निकलना, यह सब पुद्गल का स्वाभाविक कार्य है - आत्मा का कार्य नहीं, आत्मा तो मात्र ज्ञानस्वभावी है।

प्रश्न : स्वानुभव में से विकल्प में आने के पश्चात् ज्ञाता-दृष्टा में कुछ फेर पड़ता है क्या ?

उत्तर : स्वानुभव में से जब विकल्प में आता है, तब भी केवली की भाँति ज्ञाता-दृष्टा ही है। अनुभव में केवली के समान ज्ञाता-दृष्टा है और विकल्प में आ जाने पर भी ज्ञाता-दृष्टा ही है। विकल्प आता है, वह भी छूटा हुआ ही है। केवली पूर्ण ज्ञाता-दृष्टा हैं और यह नीचेवाला अल्प ज्ञाता-दृष्टा है; परन्तु हैं तो दोनों ज्ञाता-दृष्टा ही।

शोक सन्देश -

वयोवृद्ध विद्वान प्रकाशचन्द्रजी 'हितैषी' नहीं रहे

प्रसिद्ध समाजसेवी, कुशल वक्ता, आध्यात्मिक एवं वयोवृद्ध विद्वान, श्री अ. भा. दि. जैन विद्वत्परिषद् के राष्ट्रीय अध्यक्ष, सन्मति सन्देश (मासिक) पत्रिका के संपादक पण्डित प्रकाशचन्द्रजी हितैषी का दिनांक 7 जून 2003 को देहावसान हो गया है।

आपकी स्मृति में पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट परिवार, अखिल भारतीय जैन युवा फ़ैडरेशन, श्री टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धान्त महाविद्यालय एवं दैनिक स्वाध्याय सभा द्वारा दिनांक 8 जून को टोडरमल स्मारक भवन में शोक सभा आयोजित की गई।

आप अत्यन्त सुलझे हुये विचारों के तथा समन्वयवादी विचारधारा को माननेवाले थे। आप सदैव आगम को सर्वोपरी रखकर समाज को संगठित करने के पक्षधर रहे हैं।

आपके निधन से जो अपूरणीय क्षति हुई है उसकी पूर्ति निकट भविष्य में संभव नहीं है। हम सभी आपके निधन पर हार्दिक संवेदना प्रगट करते हुये कामना करते हैं कि दिवंगत आत्मा शीघ्र ही पूर्णता को प्राप्त करे।

2. मुम्बई निवासी श्री उम्मेदमलजी बड़जात्या का देहावसान हो गया है। आप जीवनभर गुरुदेवश्री से प्राप्त तत्त्वज्ञान की धारा से जुड़े रहे। जयपुर शिविरों में भी सदैव आया करते थे। आपकी स्मृति में प्रशिक्षण शिविर के दौरान 25 मई को रात्रि में श्री टोडरमल स्मारक भवन में शोक सभा आयोजित की गयी। उल्लेखनीय है कि मई के प्रशिक्षण शिविर के आमंत्रणकर्ता के रूप में आपके सुपुत्र ने स्वीकृति प्रदान की थी।

3. कोलकाता निवासी श्री रतनलालजी पाटोदी का स्वर्गवास विगत माह में हो गया है। आप सरल स्वभावी एवं स्वाध्यायी थे। श्री टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर द्वारा मई माह में संचालित प्रशिक्षण शिविर के आप संरक्षक थे। आपकी स्मृति में प्रशिक्षण शिविर के दौरान दिनांक 25 मई को टोडरमल स्मारक भवन में शोक सभा आयोजित की गई।

4. सोनगढ़ निवासी श्री खेमराजजी गिड़िया खैरागढ़ का स्वर्गवास हो गया है। आपने 34 वर्ष की आयु से आजीवन ब्रह्मचर्य लेकर अपना सम्पूर्ण जीवन धर्म साधना में व्यतीत किया। आपने अपने पूरे परिवार को धार्मिक संस्कार दिये। अपने पोते को प्रेरणा देकर श्री टोडरमल दि. जैन सिद्धान्त महाविद्यालय में अध्ययन कराया तथा वर्तमान में आपका परपोता भी टोडरमल महाविद्यालय में अध्ययनरत है।

दिवंगत आत्मार्थे शीघ्र ही अभ्युदय को प्राप्त हों - यही मंगल कामना है।

प्रवचनसार : अनुशीलन के संबंध में पाठकों के पत्र

वीतराग-विज्ञान के पूर्व प्रबन्ध सम्पादक, देश की राजधानी दिल्ली से जैनतत्त्वज्ञान का अविरल प्रचार-प्रसार करनेवाले एवं वर्तमान में लालबहादुर शास्त्री संस्कृत विद्यापीठ दिल्ली में जैनदर्शन विभाग के विभागाध्यक्ष डॉ. वीरसागरजी शास्त्री लिखते हैं कि -

“इस बार वीतराग-विज्ञान को खोला तो खोलते ही मन-मयूर हर्षित हो गया कि आपने सचमुच ही प्रवचनसार अनुशीलन लिखना प्रारम्भ कर दिया है। तथा उसे पढ़कर तो बहुत ही अच्छा लगा। आपने तीनों मंगलाचरण के श्लोकों का अभिप्राय बहुत ही गहराई से अत्यन्त सरलभाषा और सुबोध शैली में स्पष्ट किया है। इसे पढ़कर मुझे अनेक नई बातें समझ में आईं और आपसे मिलने का बहुत मन हुआ; पर क्या करता ? मिल न सका; अतः यहीं से आपको कृतज्ञतापूर्वक प्रणाम करता हूँ।”

श्री अशोककुमारजी बड़जात्या का सम्मान

दिगम्बर जैनसमाज की सर्वोच्च प्रतिनिधि संस्था दिग.जैन महासमिति (जैन संसद) के राष्ट्रीय अध्यक्ष हेतु आयोजित चुनाव में इन्दौर के श्री अशोककुमारजी बड़जात्या निर्विरोध राष्ट्रीय अध्यक्ष चुने गये। श्री बड़जात्याजी की इस गौरवमयी उपलब्धि पर श्री टोडरमल स्मारक ट्रस्ट परिवार की ओर से 25 मई 2003 को सम्मान समारोह आयोजित किया गया।

इस अवसर पर पण्डित शुद्धात्मप्रकाशजी भारिल्ल ने श्री अशोककुमारजी बड़जात्या का परिचय दिया।



डॉ. हुकमचन्द्रजी भारिल्ल श्री अशोकजी बड़जात्या को श्रीफल भेंट करते हुये

नगरों से पधारे प्रतिनिधियों ने माल्यार्पण कर स्वागत किया।

अन्त में डॉ. हुकमचन्द्रजी भारिल्ल ने अपने मार्मिक उद्बोधन में बड़जात्याजी को शुभाशीष देते हुये उनके कार्यों की सराहना की एवं भविष्य में न्याय एवं नीति मार्ग पर चलते हुये सामाजिक एवं धार्मिक कार्यों को करने की प्रेरणा दी।

छब्बीसवाँ बृहद् आध्यात्मिक शिक्षण-शिविर

रविवार, 27 जुलाई 2003 से मंगलवार, 5 अगस्त 2003 तक

श्री कुन्दकुन्द कहान दिगम्बर जैन तीर्थसुरक्षा ट्रस्ट, मुम्बई द्वारा ज्ञानतीर्थ श्री टोडरमल स्मारक भवन, जयपुर में रविवार, 27 जुलाई से मंगलवार, 5 अगस्त 2003 तक बृहद् आध्यात्मिक शिक्षण-शिविर का आयोजन किया जा रहा है।

शिविर में अर्न्तःराष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त डॉ. हुकमचन्द्रजी भारिल्ल, डॉ. उत्तमचन्द्रजी सिवनी, पण्डित रतनचन्द्रजी भारिल्ल, ब्र. यशपालजी जैन बेलगांव, पण्डित प्रदीपकुमारजी झांझरी उज्जैन, पण्डित पूनमचन्द्रजी छाबड़ा, पण्डित शान्तिकुमारजी पाटील, पण्डित संजीवकुमारजी गोधा, पण्डित पीयूषकुमारजी शास्त्री इत्यादि अनेक विद्वानों का प्रवचन एवं कक्षाओं के माध्यम से लाभ मिलेगा।

सम्पूर्ण कार्यक्रम ब्र. जतीशचन्द्रजी शास्त्री, पण्डित पूनमचन्द्रजी छाबड़ा, ब्र. धन्यकुमारजी बेलोकर, श्री सुमनभाई दोशी व श्री अमृतभाई मेहता के कुशल निर्देशन में सम्पन्न होंगे।

